ग्रंथों में मुनि का सत्संग तो समान बताया है, श्वेताम्बर ग्रंथों में श्रद्धा की प्रमुखता बताई है, पर त्याग का उल्लेख नहीं है। दिगम्बर परम्परा में उसने मधु आदि का त्याग भी किया ऐसा उल्लेख है।

पउमचरियं (आचार्य श्री विमलसूरी) में चौबीस तीर्थंकरों के पूवभवों का वर्णन किया है, पर वहां तीर्थंकरों के पूर्व के दो भव बताएं हैं। एक देवभव और दूसरा मानव का भव। भगवान महावीर पूर्वभव में छत्तयार नगरी में सुनन्द नाम से थे और उनके गुरू पोटिल्ल थे। यह सुनन्द मर कर पुष्पोत्तर विमान में गया और वहां से च्युत होकर वर्धमान हुए। इस प्रकार दो भवों की चर्चा उन्होंने की, किन्तु सम्यक्त्व प्राप्ति की कोई भी चर्चा उसमें नहीं है। ऋषभ के पास मरीचि ने दीक्षा ली, यह उल्लेख पउमचरियं में है, पर वह महावीर का पूर्व भव है या वह ऋषभ का पौत्र है, यह उल्लेख उसमें नही है।

- भगवान महावीर : एक अनुशीलन आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज (पृष्ठ 164-165)

दूसरा भव

यह नयसार का जीव मरकर शुभ कर्म के कारण सौधर्म देवलोक में एक पल्योपम की स्थिति वाला देव बना। उत्तरपुराण में इसकी आयु एक सागरोपम कही गई है। लम्बे समय तक उसने स्वर्गिक सुख भोगे।

तीसरा मरीचि का भव

स्वर्ग से चलकर नयसार का जीव तीसरे जन्म में भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के यहां राजकुमार मरीचि के नाम से पैदा हुआ। प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव का उपदेश सुनकर वह उनके पास साधु बना। वह विशुद्ध तपःसाधना करता था। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन भी किया।

एक बार बहुत भयंकर गर्मी पड़ी। इसी तप को उसका शरीर सहन न कर सका। उसने सोचा- 'मुझे गृहस्थ बन जाना चाहिए। संयम का पालन मैं नहीं कर सकता। संयम का मार्ग तो मेरे लिए मेरु के समान है।'

फिर सोचने लगा- 'गृहस्थ आश्रम में भी कौन सा सुख है? जो सुख का सत्य मार्ग है वह तो भगवान ऋषभदेव का बताया हुआ है, पर अब मैं इसमें चलने में असमर्थ हूं। ऐसे में मुझे श्रमणों का वेष को छोड़ नया वेष ग्रहण करना चाहिए।' यह सोचकर उसने परिव्राजक की वेषभूषा धारण की। संकल्प-विकल्प में उसने यह निश्चय किया ''मैं हर ग्राम में भगवान ऋषभदेव के धर्म का प्रचार करूंगा। मैं कभी अपनी कमजोरी नहीं छिपाऊंगा।''

वह दण्ड, छत्र, खड़ाऊं को धारण करता। माथे पर त्रिदण्ड तिलक लगाता। गेरूआ वस्त्र धारण करता। सचित्त जल पीता। जो जिज्ञासु बनकर उसके पास पहुंचते, वह सबको स्पष्ट कहता- ''सच्चा धर्म तो भगवान ऋषभदेव का है। मैं उस धर्म का पालन करने में असमर्थ हूं।'' इस प्रकार वह लोगों को प्रतिबोधित कर भगवान ऋषभदेव के साधु परिवार में वृद्धि करता।

भगवान ऋषभदेव द्वारा मरीचि का भविष्य कथन

एक बार भगवान ऋषभदेव धर्म-प्रचार करते हुए अयोध्या नगरी पधारे। भरत चक्रवर्ती चतुरंगी सेना लेकर दर्शन करने आया। उस समय भरत चक्रवर्ती ने प्रश्न किया-

''प्रभु! आपके समवसरण में ऐसा कोई जीव है जो आपके समान तीर्थंकर बनने योग्य हो?''

ऋषभ प्रभु ने कहा-''हां देवानुप्रिय! तुम्हारा पुत्र मरीचि इस काल में अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान के रूप में उत्पन्न होगा। इससे पूर्व वह पोतनपुर का अधिपति त्रिपृष्ट वासुदेव बनेगा। फिर विदेह क्षेत्र की मूका नगरी में तुम्हारे जैसा ही प्रियमित्र नाम चक्रवर्ती बनेगा। इस प्रकार वह जीव तीन उपाधियों को प्राप्त करेगा।''

भगवान की भविष्यवाणी से भरत चक्रवर्ती प्रसन्न हुआ। वह परिव्राजक बने अपने पुत्र मरीचि के पास आया। प्रभु ऋषभदेव की भविष्यवाणी जान भरत ने हर्षावेग के साथ कहा-

''मरीचि! तू धन्य है। तू बड़ा भाग्यशाली है। तु भविष्य में वासुदेव बनेगा। चक्रवर्ती पद पाएगा और अंत में धर्म चक्रवर्ती तीर्थंकर बनेगा।''

अपने भविष्य को सुनकर मरीचि इतना प्रसन्न हुआ कि उसके मन में प्रसन्नता के साथ कुछ अहंकार का अंश भी आ गया। वह नाचता हुआ इस प्रकार कहने लगा-

''अहा! मैं कितना महान हूं। मेरा कुल और वंश महान् है। मेरे दादा प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव हैं। मेरे पिता भरत प्रथम चक्रवर्ती हैं और मैं प्रथम वासुदेव, फिर चक्रवर्ती बनूंगा और फिर तीर्थंकर बनूंगा। हर्ष और जातीय गौरव में भरकर, उसने अपने पैरों की तीन बार जमीन पर पछाड़कर कहा[9]-''मैंने बहुत प्राप्त कर लिया है। अब इससे अधिक मुझे किसी की आवश्यकता नहीं है।'' वह अहंकारवश नाचने-कूदने लगा।

अहंकार पतन की पहली सीढ़ी है। वह जातीय अहंकार और आत्म-प्रशंसा के कारण अपनी उत्कृष्ट साधना के फल से वंचित हो गया। उसने कुल मद के कारण नीच गोत्र का बंध किया। जिसका फल भविष्य में उसे भोगना पड़ा।

एक बार मरीचि बीमार पड़ गया। उसकी सेवा के लिए उसका कोई शिष्य नहीं था। उसे शिष्य की जरूरत का अहसास हुआ। उसने एक राजकुमार कपिल को दीक्षित किया।

कपिल मुनि ने अपने गुरू मरीचि से पूछा- ''आप कठोर संयम के मार्ग को क्यों नहीं अपनाते?''

मरीचि ने शिष्य को गलत उत्तर देते हुए कहा-''मेरे मार्ग व जिनमार्ग में कोई अंतर नहीं है।''

कपिल ने मिथ्या मत की स्थापना की। मरीचि ने अंतिम समय में बिना आलोचना किए जीवन यात्रा को पूर्व किया। मरीचि का कुल अभिमान का फल उसे लम्बे समय तक भोगना पड़ा। मरीचि का जीव कोटाकोटि सागरोपम तक संसार में भटकता रहा।

मरीचि भगवान ऋषभदेव के प्रथम उपदेश में ही उनका शिष्य बना था। मरीचि के अनेक शिष्य, जिन्होंने मरीचि का साथ दिया था, उसके जीवन में उसे छोड़ पुनः प्रभु के श्रीसंघ में साधु बन गए थे।

जैन परम्परा मरीचि को परिव्राजक सम्प्रदाय का संस्थापक मानती है। इसी कारण परिव्राजक सम्प्रदाय को प्राचीन श्रमणों का अंग माना गया है। प्राचीन काल में ये लोगों की वेद विरोधी विचारधारा का समर्थन करते थे।

गुणभद्र आचार्य ने मरीचि को भरत का ज्येष्ठ पुत्र माना है। परन्तु श्वेताम्बर परम्परा में मात्र पुत्र माना है।

चउपन्नमहापुरिसचरियं में मरीचि को भागवत धर्म का प्रवर्तक कहा गया है। मरीचि के अतिरिक्त उसके शिष्य सांख्यमत प्रवर्तक कपिल का वर्णन जैसा जैन ग्रंथों में आया है, वैसा भागवत और विष्णुपुराण में उपलब्ध नहीं होता है। भागवतकार ने भरत वंश की परम्परा का वर्णन करते हुए, अनेक

पीढ़ियों के पश्चात् उसे सम्राट् पुत्र कहा है। उसकी माता का नाम उत्कला दिया है।

जैन साहित्य में कपिल को राजपुत्र माना गया है। वैदिक-साहित्य में वह विष्णु का पांचवां अवतार व कर्दम ऋषि का पुत्र है। उसे महाज्ञानवान, प्रतिभा-सम्पन्न माना गया है। भगवान गीता में श्रीकृष्ण ने उन्हें सिद्धों में सर्वश्रेष्ठ माना है।

चतुर्थ भव- ब्रह्मदेव

चौरासी लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर मरीचि का जीव ब्रह्मदेवलोक में ३१ सागरोपम की स्थिति वाला देव बना।

पांचवां भव- कौशिक

यहां से स्वर्ग की आयु पूर्ण कर मरीचि का जीव कोल्लाक सन्निवेश में अस्सी लाख पूर्व की आयु वाला कौशिक ब्राह्मण बना। फिर पूर्वजन्म के शुभ कर्म के परिणाम से उसने वैराग्य धारण कर परिव्राजक दीक्षा स्वीकार की। आचार्य शीलांक ने लिखा है कि कौशिक का जीव मरकर सौधर्म देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति वाला देव बना था।

दिगम्बर परम्परा के ग्रंथों में भी ऐसा ही वर्णन है। उसका जन्म-स्थान अयोध्या कहा गया है। उसका पिता कपिल ब्राह्मण और माता काली है। उसका नाम जटिल कहा गया है। इस भव की आयु के बाद उसने विभिन्न गतियों में जन्म-मरण किया जो संख्यातीत है।

छठा भव- पुष्यमित्र

कौशिक का जीव अपनी आयु पूर्ण करके स्थूणा (स्थानेश्वर) में पुष्पमित्र नामक ब्राह्मण हुआ। वहां उसकी आयु ७२ लाख पूर्व की थी। अंतिम समय में वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

सातवां भव- सौधर्मदेव

जैनधर्म में जाति-पाति, धर्म व लिंग का महत्त्व नहीं है, न ही देश, काल व आयु का प्रश्न है। जो भी साधना करे उसे उसकी साधना अनुसार जरूर फल मिलता है। इसी दृष्टि से पुष्यमित्र मरकर सौधर्म देवलोक में मध्यम स्थिति वाला देव बना। वहां उसने देवता के सुख भोगे।

आठवां भव- अग्निद्योत

देवलोक की आयु पूर्ण कर वह चैत्य सन्निवेश में अग्निद्योत नाम का ब्राह्मण हुआ। उसकी आयु ७६ लाख पूर्व की थी। वहां भी वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना। दिगम्बरों के उत्तरपुराण में इस भव का वर्णन नहीं मिलता है।

नवमा भव- ईशान देवलोक

यहां से आयुष्य पूर्ण कर अग्निद्योत ब्राह्मण ईशान देवलोक में पैदा हुआ। वहां लम्बे समय तक देवलोक के सुख भोगे।

दसवां भव- अग्निभूति

इस भव में उसका जन्म मन्दिर सन्निवेश में हुआ। उसका कुल ब्राह्मण था। उसकी कुल आयु ५६ लाख पूर्व थी। जीवन के अंतिम काल में वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना। पूर्वजन्म का मरीचि भव-भव में

परिव्राजक बनकर साधना करता गया। साधना का फल सदैव मीठा होता है फिर साधना चाहे किसी रूप या वेष में की जाए। उत्तरपुराण में सूतिका नामक भव में अग्निभूति ब्राह्मण की पत्नी गौतमी के यहां अग्निसह ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हुआ।

ग्यारहवां भव- सनत्कुमार

वहां से आयु पूर्ण कर सनत्कुमार कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना।

बारहवां भव - भारद्वाज

वहां से आयुष्य पूर्ण कर श्वेताम्बिका नगरी में भारद्वाज नाम का ब्राह्मण बना। उसकी आयु ४४ लाख पूर्व की थी। यहां भी वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना। उत्तरपुराण के अनुसार एक भव अग्निमित्र का और द्वितीय भव माहेन्द्रकल्प का ये दो भव और हुए। वहां से चलकर यह जीव शाङ्कण ब्राह्मण की पत्नी मन्दिरा के यहां विश्व-विश्रुत भारद्वाज-पुत्र के रूप में पैदा हुआ।

तेहरवां भव

भारद्वाज वहां के आयु पूर्ण कर माहेन्द्र कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना। यहां से च्यवकर उसकी आत्मा ने अनेक भव ग्रहण किये जो संख्यातीत थे।

चौदहवां भव

मरीचि का जीव विभिन्न गतियों में भ्रमण करता हुआ राजगृह में स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ। वहां उसकी कुल आयु चौंतीस लाख पूर्व थी। जीवन के अंत में वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

इस तरह ६ भव परिव्राजक के माने जाते हैं। यहां एक बात ध्यान देने वाली है कि यह नयसार के भव में जाकर सम्यक् दर्शन का प्रचारक बना। चाहे प्रारंभ में परिव्राजक सम्प्रदाय श्रमणों का अंग था। बाद में यह सम्प्रदाय मिथ्या आग्रहों में फंस गया। एकान्त आग्रह के कारण परिव्राजकों की साधना, बाल साधना बनकर रह गई। ऐसी साधना स्वर्ग का कारण तो बन सकती है, पर मोक्ष का कारण नहीं बन सकती। सम्यक्त्व के अभाव में इस जीव को अनंत-अनंत जन्म भटकना पड़ता है। सम्यक्त्व मिलने पर संसार परिभ्रमण-सीमित हो जाता है, जैसा नयसार के साथ हुआ।

पन्द्रहवां भव- ब्रह्मदेवलोक

इस भव में वह जीव मध्यम देवलोक की स्थिति वाला देव हुआ। उत्तरपुराण में ब्रह्म के स्थान पर माहेन्द्र नाम आया है। देवलोक की आयु संपूर्ण कर उसकी आत्मा ने अनेक बार अनेक भवों में जन्म लिया।

सोलहवां भव- विश्वभूति

ब्रह्मलोक की आयु पूर्ण कर नयसार का जीव लम्बे समय तक जन्म-मरण के चक्र में फंसा रहा। लम्बे भव-भ्रमण के पश्चात् वह मगध की राजधानी राजगृह में युवराज विशाखभूति के पुत्र विश्वभूति के रूप में पैदा हुआ। विशाखभूति का बड़ा भाई विश्वनन्दी राजा था। उसका पुत्र था विशाखनंदी। दोनों भाईयों में आपसी ईर्ष्या-द्वेष कूट-कूटकर भरा हुआ था। विश्वभूति यद्यपि राजा के छोटे भाई का पुत्र था, पर वह बड़ा तेजस्वी, पराक्रमी था। दूसरी ओर राजा का पुत्र विशाखनंदी कायर, भीरू और चिड़चिड़ा

था। यही कारण था कि विश्वभूति अपने परिवार में सम्मान का पात्र था। विश्वभूति को पुष्प-क्रीड़ा का अत्यधिक शौक था। वह अपनी रानियों के साथ उद्यान में जाता और विभिन्न फूलों की गेंद बनाकर उनसे खेलता।

इधर जब राजकुमार विशाखनंदी विश्वभूति की क्रीड़ा सुख की बात सुनता, तो द्वेष कर जल-भुन जाता। उसका मन करता कि वह अभी उद्यान में जाकर विश्वभूति को निकाल दे। वह अपनी माता तक के सामने इस बात के लिए चीख पुकार करता। पर सब दिन एक समान नहीं होते। कभी-कभी पुण्यवान जीव को भी मुसीबत में फंसना पड़ता है।

एक समय विश्वभूति पुष्प करंडक उद्यान में अपनी पत्नियों के साथ उन्मुक्त क्रीड़ा कर रहा था। महारानी की दासी उस उद्यान में पुष्प वगैरह लेने आई। उन्होंने विश्वभूति के सुख को देखा, वह भी राजकुमार की भांति जल-भुन गई। उन्होंने जाकर रानी से कहा-''हे महारानी जी! राज्य का सच्चा सुख तो विश्वभूति भोगता है। तुम्हारा बेटा विशाखनंदी तो बेचारा युवराज होते हुए भी दुःख भोग रहा है। उसमें हिम्मत नहीं कि वह उद्यान में जा सके।''

रानी को यह बात चोट कर गई। रानी ने राजा को फटकार लगाते हुए कहा- ''आपके राज्य में कितना अन्याय है कि मेरा बेटा विशाखनंदी युवराज होते हुए भी उद्यान में नहीं जा सकता। आपका भतीजा सारा-सारा दिन अपनी रानियों के साथ उद्यान में पुष्प-क्रीड़ा करता रहता है। युवराज वह है या विश्वभूति?''

महाराज बहुत समयज्ञ थे। उन्होंने रानी का क्रोध शांत करते हुए कहा- यह हमारी कुल मर्यादा है। जब कोई राजा या राजकुमार आदि अपने अन्तःपुर में रानियों-दासियों के साथ उद्यान में हो तो दूसरा कोई प्रवेश नहीं कर सकता।''

रानी कहां समझने वाली थी। रानी ने कहा- ''आपकी मर्यादा किस काम की? जब मेरा पुत्र भिखारियों की तरह घूमता रहे। कान खोलकर सुन लो, जब तक विश्वभूति को घर से नहीं निकाला जाएगा, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी।''

राजा के सामने घोर धर्म-संकट उत्पन्न हो गया। एक तो अपने परिवार की कलह, दूसरा अपने भाई के लड़के की समस्या। उसने सोचा-''एक ही राज्य में ऐसा अन्याय कैसे संभव है?'' गुणवान विश्वभूति के सामने मेरा आलसी पुत्र विशाखनंदी है। विश्वभूति हमारे राज्य की शक्ति का प्रतीक है। इन स्त्रियों का स्वभाव द्वेषमय होता है। इनको शांत करने और परिवार की कलह को समाप्त करने के लिए कोई समाधान ढूंढ़ना पड़ेगा।''

राजा ने यह बात अपने अमात्य से की। अमात्य ने एक षड्यन्त्र रचा। उसने एक पत्र राजा को पहुंचाया। उस पत्र को पढ़ते ही राजा ने युद्ध की घोषणा कर दी। रणभेरियां बजने लगीं। घोषणा हुई- ''पड़ोसी सामन्त पुरूषसिंह ने सीमा पर आक्रमण कर दिया है।''

विश्वभूति ने जब रणभेरियां सुनीं। वह उद्यान में अपनी क्रीड़ा समाप्त कर बाहर निकला। योद्धा वही हैं, जो अपना कर्त्तव्य पहचाने। अपनी शूरवीरता को परखने का प्रमाण योद्धा युद्ध में देता है। उसने बाहर आकर शहर में प्रवेश किया। फिर राजा के पास आकर प्रार्थना की- ''अचानक यह युद्ध हुआ कैसे? किस दुश्मन की शामत आई है?''

राजा ने मंत्री के पत्रानुसार विश्वभूति को समझाया- पड़ोसी सीमा पर पुरूषसिंह सामन्त ने आतंक